मूल्यों का संवर्धन करती दयानंद शिक्षा पद्धति

*डॉ. भास्कर शर्मा

सारांश –

सभ्य एवं सुसंस्कृत मानव ही किसी समाज एवं राष्ट्र की उन्नति का अधार होते है। मानव उत्थन हेतु दयानंद की दूरदर्शिता दयानन्द साहित्य से दृश्टिगोचर होती है। वह मानव जीवन में शिक्षा को कितना महत्व देते थे यह इसी से स्पष्ट होता है कि अपने प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश मे इन्होंने ईश्वर के पश्चात शिक्षा विषय पर चर्चा की है। शिक्षा प्रत्येक काल का अपरिहार्य अंग है। शिक्षा एक ऐसा सक्षम साधन है जो परिवर्तन एवं विकास की नवीन संभावनाएं उत्पन्न कर सकता है। बहुत अतीत का प्रेरणादायक उल्लेख वर्तमान को प्रेषित करता है। संभवत दयानंद की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति वर्तमान समय में भी उपयोगी और अनुकरणीय हो सकती है। अतः प्रस्तुत शोधपत्र शिक्षा के क्षेत्र में नवीन संभावनाओं के बीजारोपण में सहायकसिद्ध हो सकता है।

कूट शब्द : मूल्यपरक, शिक्षा पद्धति, वैदिक शिक्षा

प्रस्तावना –

प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति हेतु उसकी शिक्षा पदति में राष्ट्रीय भावनाओं एवं मूल्यों का समावेश होना आवश्यक है। भारतीय शिक्षा परम्परा प्रारंभ से ही सुदृढ एवं समृद्ध रही है। शिक्षा के माध्यम से विधार्थियों में विभिन्न मूल्यों का आरोपण भारतीय शिक्षा पद्धति के मुख्य उद्देश्यों में से एक रहा है। 'मूल्य' शब्द का प्रयोग प्रायः दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, सौदर्यशास्त्र इत्यादि में देखने को मिलता है। जीवन को आदर्श एवं सफल बनाने के लिए माननीय जीवन मूल्य महत्वपूर्ण भमिका निभाते है। इन मूल्यों से युक्त शिक्षा मूल्यपरक शिक्षा कहलाती है। जिसमें नैतिक, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, बौद्धिक इत्यादि विषय अंतर्भूत होते है। ऐसी कार्यविधि अथवा प्रणाली जिसमें इन मानवीय संवेदनाओं को बमूल्यपरक बनाकर शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाने पर बल दिया जाए उसे मूल्यपरक शिखा पद्धति कहते है। सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा ऐसे मूल एवं सार्वभौमिक मूल्य है जिन्हें उस आधारशिला के रूप में अभिनिर्धारित किया जा सकता है जिसका है जिनके आधार पर शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया जाए। वास्तव में ये पांच ऐसे सार्वभौमिक मूल्य है जो मानवीय व्यक्तित्व केक क्रमशः पांच कार्य क्षेत्रों – बौद्धिक, शारीरिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और अध्यात्मिक को प्रतिनिधित्व करते है। इन मूल्यों को शिक्षा में इस प्रकार से प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि इनका संबंध पूर्णता वास्तविकता से बना रहे।[1] क्योंकि वह संसार जो हम अपने बच्चों को धरोहर में देते है, वह इस पर निर्भर करेगा कि हमने संसार को किस प्रकार के बच्चे धरोहर के रूप में दिए।[2] शिखा बालक की योग्यता, प्रतिमा, कार्यपद्धति, क्षमता, व्यवहार इत्यादि सभी तत्वों का विकास करती है। शिक्षा आदिभौतिक, आदिवैदिक एवं आध्यात्मिकता का पूर्ण ज्ञान कराकर मानव में मानवीय गुणों का विकास करती है।[3]

19वीं शताब्दी में जब अंग्रेजों की कूटनीति ने प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के मूल स्वरूप को ध्वस्त करने का प्रयास किया तब दयानन्द ने वैदिक शिक्षा पद्धति का आधार बनाकर अपनी पठन–पाठन व्यवस्था प्रस्तुत की जिनका उद्देश्य तत्कालीन शिक्षा पद्धति में भारतीयता का पुट समाहित करना था। नैतिक मूल्यों को आरोपित करने के लिए शिखा एक सशक्त माध्यम है इस बात को दयानन्द भलीभांति जानते थे। दयानन्द ने शिक्षा के पांच उद्देश्य – शारीरिक

विकास, मानसिक विकास, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति, समाज सुधार की शक्ति का विकास, सद् ज्ञान की प्राप्ति तथा गुणों का विकास माना।[4] उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ है – पदार्थ का यथावत् ज्ञान, आत्म कल्याण तथा पर कल्याण मेंप्रवृत करने वाला अर्थात शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पदार्थ के स्वरूप का यथावत ज्ञान प्राप्त करने हुए वांछनीय गुणों के विकास द्वारा पदार्थ स्वयं के तथा दूसरों के जीवन को सुखी बनाया जा सके। दयानंद के अनुसार शिक्षा मनुष्य जीवन का सबसे महान एवं मूल्यवान गुण है।[5] इसलिए सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना चाहिए।

दयानन्द ने सर्वप्रथम समान रूप से सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का समर्थन किया चाहे वह निर्धन हो या धनी, स्त्री हो या पुरूष। उनके अनुसार सबकसे तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिए, जाए चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की संतान हो, सबकसे तपस्वी होना चाहिए।[6] इस प्रकार दयानन्द ने सबके लिए समरूप परिश्रम, अनुशासन, एवं अवसरो का आहवान किया। दयानन्द ने शिक्षा पद्धति के मूलभूत तत्वों का वर्णन करते हुए कहा है माता को गर्भवस्था से ही बालक की औपचारिक शिक्षा एवं संस्कार के विषय में सजग रहना चाहिए। बालक की प्रारंभिक शिक्षा गृह से ही उसके माता–पिता द्वारा संचालित होनी चाहिए। 5 वर्ष की अरायु तक बालक को माता शिक्षित करे, आठ वर्ष तक पिता द्वारा बालक करो शिक्षित किया जाए इसके पश्चात उसे गुरू के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाए।[7] बालक की औपचारिक शिखा उपनयन संस्कार के बाद आरंभ होनी चाहिए। 8 वर्ष की आयु में बालक तथा बालिकाओं को पाठशाला में भेज देना चाहिए। पाठशाला नगर से 5 मील की दूरी पर किसी शांत स्थान पर स्थित होनी चाहिए। बालक तथा बालिकाओं के लिए अलग–अलग पाठशालाएं होनी चाहिए।[8] दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति में पाठ्यक्रम पर भी विस्तापूर्वक चर्चा की है। उन्होंने शिखा पद्धगति में नैतिक मूल्यों एवं जीवन उन्नयन पर विशेष बल दिया । वह शिक्षा को आचरणों में ढालने के पक्षधर थे। इसीलिए उन्होंने मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत विदुरनीति आदि जैसे उतम प्रकरण पढ़ने का उपदेश दिया जिनसे बुरी आदते दूर हो और उतम सभ्यता प्राप्त हो सके। इन ग्रंथों को पाठयक्रम में रखने का उद्देश्य विधार्थियों में उन चारित्रिह विशेषताएं पैदा करना था जो इन ग्रंथों के अनुकरणीय पात्रों में थी।[9]

प्राचीन वैदिक दर्शान पर आधारित उनके उपदेशों ने तत्कालीन विक्षिप्त एवं व्यथित समाज के लोगों का उचित मार्गदर्शन करते हुए एकता स्थापित करने का प्रयास किया था। उनके शैक्षिक विचारों में समयानुकूल व्यावहारिकता थी। इसीलिए उनके शिखा संबंधी आधारभूत सिद्धांतों को लेकर बालक और बालिकाओं के लिए अलग–अलग अनेक शैक्षिक संस्थाएं खोले गए। यह जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, धार्मिक शिक्षा और व्यवसायिक शिक्षा समर्थक थे। उन्होंने सह–शिक्षा का कड़ा विरोध किया। उनके प्रभाव से ही देश भर में मातृभाषा के माध्यम से चलने वाले डी.ए.वी. स्कूल एवं कालेजो की स्थापना हुई तथा गुरूकूल प्रणाली का भी विकास हुआ। कांगडी तथा ज्वालापुर महाविधाजय, हरिद्वार तथा वृंदावन गुरूकूल (बालकों के लिए) तथा देहरादून एवं सासनी (अलीगढ़) के गुरूकूल (बालिकाओं के लिए) इस संबंध में उपर्युक्त उदाहरण है।

उन्होंने बालक के गर्भकाल से लेकर 25 वर्ष की आयु तक की शिक्षा की पाठ्य चर्चा निश्चित की है। उनके अनुसार स्वाध्याय, उपदेश, वख्यान और वाद–गविाद प्रमुख शिक्षण विधियो है। शारीरिक, मानसिक, और नैतिक विकारस करना ही उनके अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्यि होना चाहिए जिससे एक आदर्श नागरिक का निर्माण हो। उनके अनुसार जितनास माता से संतानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नही।[11] माता–पिता को अति उचित है कि गर्भाधान से पूर्व, मध्य और पश्चात मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गध, रूक्ष बुद्धिनाशक पदार्थो को छोडकर शांति, आरोग्य, बल, पराक्रम और सुशीलता को प्राप्त करे।[12] 9वें वर्ष के आरंभ में दविज अपनी संतानों का उपनयन करके जैसे अन्य शिक्षा है वैसे चोरी, आलस्य, प्रमाद, मादक, छव्य,मोह आदि दोषों के छोडने औरसत्याचिार के ग्रहण

करेन की शिक्षा देने की कोशिश करें। संतानों को उतम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों को धारण कराना माता–पिता, आचार्य और संबंधियों का मुख्य कर्म है।[13] दयानन्द ने विभिन्न आर्श ग्रंथों से ब्रह्मचर्य काल को उद्धृत कर एक आचार संहिता प्रस्तुत की, जो आचार्य और विद्यार्थियों दोनों के लिए है। इसको दयानन्द ने पाठन–पठन के नियम कहा है। इनके अनुसार जब तक गुरूजनों का आचरण स्वयं वैसा नही होगा तब तक बालकों का आचरण आदर्श नही बन सकता।[14] पढ़ाने वालों को लक्षित करते हुए उन्होंने लिख कि :–

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता। यमर्था नापकर्षिन्त स वै पण्डित उच्यते।।

अर्थात् – जिसे परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान हो, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगी, सुख–दुःख आदि को सहन करने वाला धर्मग का नित्य सेवन करने वाला हो, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुडाकर अधर्म की ओर न खींच सके वह पंडित कहलाता है।[15]

स्वामी जी के अनुसार जो विद्या पढ़े और पढ़ाए उनमें ये सात दोष नहीं होने चाहिए –

आलस्य मदमोही चापलं गीष्ठिरेव च।।

स्तब्धता चामिमानित्वं तथा त्यागित्वमेद च।।

एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनो मताः।।

अर्थात् – आलस्य, अभिमान, नशाकरना, मूढता, चपलता, व्यर्थ इधर–उधर की बाते करना, जडता, कभी पढ़ना कभी न पढ़ना, अभिमान, और लाभ–लालच ये सात विद्यार्थियों के लिए विद्या के विरोधी दोष है।[16]

दयानन्द के अनुसार विधार्थी और शिक्षार्थी दोनों के जीवन में अनुशासन का एक समान महत्व है। दोनों यथार्थ आचरण एवं सत्याचार से सत्य विद्याओं का अध्ययन एवं अध्यापन करे, तपस्वी अर्थात धर्म अनुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को ग्रहण करें। बाहय इंद्रियों को बुरे आचरणों से रोक कर पढ़े और पढ़ाते जाएं, मन को सब प्रकार के दोषों से हटाए।[17] शिक्षा को परिवर्तन का उतम साधन स्वीकार करते हुए है दयानन्द कहते है कि जिससे मनुष्य विद्याा आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदा आनंदित हो सके वह हशक्षा कहलाती है।[18] विद्या और अविद्या के अंतर को स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेकर अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सकें चह विद्या है और जिससे पदार्थो के स्वरूप को उल्टा जानकर अपना और पराया अनुपकार करें वह अविद्या कहलाती है।[19]

निरूक्त के अनुसार आचार्य शब्छ को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा –

आचार्य आचार्य ग्रहयति।

अर्थात – आचार्य इसलिए कहलाता था क्योंकि वह अपने छात्रों को आचरण का पाठ पढ़ाता था।[20]

दयानन्द के अनुसार विद्याा द्वारा यथार्थ ज्ञान से युक्त होकर, यथा योग्य व्यवहार करने कराने से आप और दूसरों को आनन्द युक्तकरना विद्याा का फल है, क्योंकि बिना विद्या के किसी मनुष्य को निश्चल सुख नही हों सकता।[21] उतम गुणों की प्रशंसा करते हुए दयानन्द लिखते है कि उतम गुण उसके बुरे काम और दुखों को नष्ट करके सर्वोतम धर्मयुक्त कर्मो और सब सुखों को प्राप्त करवाने वाले होते है और इन्हीं के द्वारा मनुष्य उतम अध्यापक और उतम विद्यार्थी बन सकते है।[22] आचार्य किस प्रकार से विद्या और सुशिक्षा को विद्यार्थियों को ग्रहण करवाए इसका उतर देते हुए वह कहते है कि आचार्य समाहित हो कर इस प्रकार शिक्षा ग्रहण करवाए जिससे विधार्थी की आत्मा

के भीतर अर्थ सुनिश्चित हो जाए और उसका सत्साह बढ़ता जाए, वह ऐसी चेष्ठा और कर्म कभी न करे जिसको करके या देखकर विधार्थी अधर्म युक्त हो जाए।[23] उन्होंने समस्त विद्या और अज्ञानता का नाश करके ज्ञान को स्थापित करने तथा वेदों में वर्णित मानव जीवन को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। वैदिक काल में यह माना जाता था कि मनुष्य छात्र जीवन में अनुशासित जीवन व्यतीत करके भविष्य के लिए अद्वितीय शक्ति प्राप्त कर लेता है। उस समय शिखा का मुख्य उद्देश्य मस्तिष्क को अनुशासित करना था ताकि बालक दुराचरण से दूर रह सकें। शिक्षा के माध्यम से बालक की तामसिक और पाशविक प्रवृतियों पर नियंत्रण किया जाता था जिससे वह सदसत का भेद करने में समर्थ होता था।[24] ऋग्वेद में तो शिक्षा का फल ही उतम चरित्र आचरण कहा गया है।[25] वैदिक युग में शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति का व्यवसायीकरण नही हुआ था। लोग वास्तविक एवं संपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति क लिए ही विद्या का अध्ययन करते थे। उस समय शिक्षा आत्माज्ञान, व्यवहार कुशलता, चरित्रनिर्माण, सत्यनिष्ठा, कर्तव्य परायणता और विश्व कल्याण की कामना के लक्ष्यों को सामने रखकर दी जाती थी।[26] दयानन्द ने वेद को आधार बनाकर प्रचीनतम परम्परा तथा बौधिकता का समन्वय किया, आध्यात्मिकता तथा व्यावहारिकता दोनों को उचित महत्व दिखलाया और धर्म तथा समाज में नवीन क्रांति पैदा की।[27]

दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति की एक अनुपम विशेषता है कि इसमें विविध विषयों का समावेश है। सदाचार, विद्या, अनुराग, शिष्टाचार जैसे सद्गुणों को, संगीत आदि ललित–कलाओं, शरीर–विज्ञान, पदार्थ–विज्ञान, आदि विज्ञानों, कला–कौशल और राष्ट भावना, समाज सुधार एवं लोकोपकार जैसे सद्भावों को समुचित स्थान दिया गया है।[28] दयानन्द ने प्रत्येक्ष तथा अप्रत्येक्ष रूप से भारतीय शिक्षा पद्धति में अमूल्य योगदान दिया। ऋग्वेदादिभाष्य भमिका, सत्यार्थ प्रकाश, व्यवहारभानू आदि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिसमें उन्होंने वैदिक शिक्षा पर आधारित अपने शैक्षिक विचारों की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। दयानन्द मूल्यपरक वैदिक उपदेशों को जनसाधारण के लिए सुलभ बनना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने "वेदों की ओर लौटो" का उद्घोष दिया। इस प्रकार दयानन्द ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पद्धति प्रस्तुत की जो विद्यार्थियों में माराननीय मूल्यों का विकास करके उनके व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

निष्कर्ष :

वस्तुतः दयानन्द कही मल्यपरक शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य मानव मात्र की उन्नति था। नारी शिक्षा, नि शुल्क शिक्षा, सर्वसमान शिक्षा कइत्यादि दयानन्द शिक्षा पद्धति के ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है जिन्हें दयानन्द ने सर्वनप्रथम प्रतिपादित किया और इन्हें वर्तमान शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दयानन्द ने अपनी रचनाओं, सम्भाषणों, लेखों तथा शास्त्रार्थो के माध्यम से प्राचीन वैदिक ज्ञान एवं मूल्यों को पुनः स्थापित करने के भरसक प्रयास किए। अद्यतन भी हम पुरातन और नवीन शिक्षा पद्धति के सामंजस्य से ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पद्धति का निर्माण कर सकते हैं जो प्रचलित शिक्षा में गुणात्मक संशोधन की भावनाओं को प्रबल कर सकती है।

***व्याख्याता**
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1. राजपूत, जगमोहन सिंह, शैक्षिक परिवर्तन का यथार्थ, विद्या विहार, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2004, पृष्ठ– 188

2. वही, पृष्ठ– 131
3. आर्या नीरजा, जैन अंजलि, नारंग पी एवं जैन रचना, शिक्षा कोश (3 खण्डों में) खण्ड–II, (भाग XII, शिक्षा के सिद्धांत), के एस. के. पब्लिशर्स, 2005, पृष्ठ–1
4. पाठक, आर.पी., भारत के महान शिक्षा शास्त्री, पियर्सन पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012 पृष्ठ–28
5. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ–30
6. वही, पृष्ठ–26
7. वही, पृष्ठ–45
8. पाठक आर.पी. भारत के महान शिखा शास्त्री, पियर्सन पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ–32
9. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ–20
10. पाठक आर.पी. भारत के महान शिखा शास्त्री, पियर्सन पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ–32
11. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ–20
12. वही, पृष्ठ–21
13. वही, पृष्ठ–24–26
14. कुमार, सुरेन्द्र, महर्षि दयानन्दवर्णित शिक्षापद्धति (महर्षि के शब्दों में अनुशीलन सहित), वैदिक अनुसंधान सदन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ–138,
15. दयानन्द, स्वामी, व्यवहारभानु, वैदिकयंत्रालय, अजमेर, पंचम संस्करण, संवत् 1957, पृ.1
16. वही, पृष्ठ–6
17. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ–33
18. दयानन्द, स्वामी, व्यवहारभानु, वैदिकयंत्रालय, अजमेर, पंचम संस्करण, संवत् 1957, पृ.1
19. वही, पृष्ठ–7
20. शास्त्री, कपिल देव एवं पांडे, श्रीकांत (समीक्षक), यास्कीय हिंदी– नियक्त, साहित्य भंडार, मेरठ, 1999, 1/4
21. दयानन्द, स्वामी, व्यवहारभानु, वैदिकयंत्रालय, अजमेर, पंचम संस्करण, संवत् 1957, पृ.13
22. वही, पृष्ठ–7
23. वही, पृष्ठ–13
24. कालरा, सरला, प्राचीन भारत में लौकिक शिक्षा, साक्षर भारत, जयपुर, 2013, पृष्ठ–424
25. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, ऋग्वेद संहिता, 7 स्वाध्याय मंडल पारडी, बलसाड, गुजरात, 1931, 1/89/1
26. झा. नागेनद्र (डॉ.) वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति, वेंकटेश प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–16–18
27. शास्त्री, श्री निवास (डॉ.), दयानन्द–दर्शनः एक अध्ययन, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र 1977, भूमिका
28. वही, पृष्ठ–122